Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

रीतिकालीन आचार्य कुलपति का श्रृंगारेतर (रस निरूपण) काव्य

डॉ. गुंजन त्रिपाठी
1N/5C, तिलक नगर
अल्लापुर, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

Article Info
Volume 4, Issue 2
Page Number : 19-25

Publication Issue :
March-April-2021

Article History
Accepted : 10 March 2021
Published : 15 March 2021

सारांश– 'रीति' का अर्थ प्रणाली, पद्धति या शैली होता है। संस्कृत में रीति का अर्थ 'विशिष्ट पद रचना' है परंतु हिंदी में उक्त काल के संदर्भ में इसका प्रयोग शास्त्रीय ग्रंथों अर्थात् लक्षण ग्रंथों के अनुकरण पर काव्य रचना करने के अर्थ में हुआ है! इस प्रकार रीतिकाव्य वह काव्य है जो लक्षण के आधार पर या उसे ध्यान में रखकर लिखा गया है। इसी प्रकार की रचनाओं की अधिकता या प्रभाव के कारण इस काल को रीतिकाल कहा गया। रीतिकाव्य के भीतर प्रायः श्रृंगार के विभिन्न पक्षों को लेकर काव्य रचना हुई। इसके अतिरिक्त वीर, नीति और भक्ति मूलक रचनाएं भी परम्पराबद्ध रूप में रीति कवियों ने प्रस्तुत की है। कुलपति के श्रृंगारेतर काव्य में प्रशस्तिमूलक, अनूदित और भक्ति भावित वीर काव्य पद्धति के प्रभाव रूप में शिवाजी, रामसिंह–प्रशंसा, द्रोणपर्व तथा दुर्गा सम्बन्धिनी रचनाएँ देखी जा सकती हैं। भक्ति भावित रचनाएँ और नीतिमूलक सूक्तियाँ–ध्यान लीला, रसरहस्य' और 'युक्ति–तरंगिणी' में उपलब्ध हो जाती हैं। तांत्रिक प्रभाव 'दुर्गाभक्ति–चन्द्रिका' के दस–महाविद्या प्रकरण में समाहित है। श्रृंगारेतर रसों का वर्णन 'रसरहस्य' और 'युक्ति–तरंगिणी' में हुआ है। प्रस्तुत शोधपत्र में रीतिकालीन आचार्य कुलपति के श्रृंगारेतर रस निरूपण काव्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्दः– प्रशस्तिमूलक, रीतिकाव्य, नीतिमूलक, सामासिकता आलम्बन, अनूदित एवं आक्षिप्त आदि।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

रीतिकालीन वीर–काव्यों में लोक–कल्याण की वृत्ति से अनुचालित वीर नायकों को ही आलम्बन रूप में स्वीकार किया गया है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, कृष्ण, शिवाजी तथा छत्रसाल पर रीतिकाल के अन्तिम चरण की वीर रचनायें इस तथ्य को पुष्ट करती हैं।[1] वीर काव्य के जन्म की प्रेरणाओं में औरंगजेब की युयुत्सा तथा हिन्दू राज्यों के पुनर्गठन की संभावनाओं को ऐतिहासिक तथ्य माना जा सकता है, किन्तु नीति और भक्तिकाव्य के लिए रीतिकालीन सांस्कृतिक सामासिकता उत्तरदायी नहीं कही जा सकती।[2] लक्ष्य की दृष्टि से श्रंगारेतर काव्य में श्रृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों के उदाहरण प्रस्तुत करने में रीति कवि पुरातन पर अधिक आश्वस्त है। वीर, रौद्र अद्भुत आदि में उसने राम, कृष्ण, अर्जुन, भीष्म, कर्ण तथा हास्य आदि प्रकरणों में महादेव आदि का आलम्बन रूप में चित्रण कर अपनी विगत दृष्टि का परिचय दिया है।[3]

आचार्य कुलपति ने मम्मट को आधार बनाकर रसों की संख्या का निरूपण किया है। वह श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स तथा अद्भुत सहित आठ रस नाटक में और षान्त सहित नव रस कविता में मानते हैं। मम्मट की कारिका मूल रूप से 'नाट्यशास्त्र' की कारिका है। वाग्देवतावतार मम्मट ने उसे भरत के 'नाट्यशास्त्र' से ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है। इस क्रम के सम्बन्ध में भी 'अभिनव भारती' में विशेष प्रयोग किया गया है। सम्मिलन सापेक्ष्य होने के कारण श्रृंगार हास्य और निरपेक्षता के कारण करुण को स्थान दिया गया है। भवभूति ने 'तटस्थं नैराश्यात्' कहकर इसका समर्थन किया है। करुण का मूल कारण रौद्र से सम्बन्धित होता है। रौद्र अर्थ प्रधान होने के कारण वीर के साथ सम्बद्ध है, वीर रस का कार्य भयभीतों को अभय प्रदान करना है। अतः वीर के साथ भयानक का सम्बन्ध होता है। वीभत्स विभाव के रूप में वीर और रौद्र का परिणाम होता है। इन सब के मूल में चमत्कार के कारण अद्भुत रहता है। अतः अन्त में अद्भुत रस को स्थान देना चाहिए। काव्य में, शान्तरस के निवृत्तिमूलक होने के कारण इन सबके बाद गणना करनी चाहिए। भरत के 'नाट्यशास्त्र' के भट्टलोल्लट, भट्टनायक तथा अभिनवगुप्त आदि टीकाकार शान्तरस की स्थिति स्वीकार करते हैं। रामस्वामी शास्त्री की यह मान्यता कि भरत प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' में शान्तरस सम्बन्धी प्रकरण प्रक्षिप्त है, सर्वथा अनुचित प्रतीत होती है। 'अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः' का आशय केवल नाट्य में आठ रसों का प्रतिपादन करना है। काव्य में शान्तरस भी हो सकता है, अतः काव्यप्रकाशकार ने 'निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमोरसः' लिखकर शान्तरस का प्रतिपादन किया है। कुलपति की कारिकाओं से इस बात की पुष्टि हो जाती है।

पहिलो रस सिंगार पुनि, हास्यरु करुन बखान,
रौद्रो वीर भयानको औ वीभत्सहिं जान।
अद्भुत सो मिलि आठ यह, रस नाटक में होत,
शांत सहित नौ कबित में कविकुल कहत उदोत।

'युक्तितरंगिणी' में केवल लक्ष्य रूप में सब रसों के उदाहरण रखे गये हैं और 'रसरहस्य' में रसों की परिभाषा, विभावादि–निरूपण के साथ रसों के उदाहरण लक्षण दिये गए हैं। 'युक्तितरंगिणी' में विस्तार से न कहने का कारण स्पष्ट करते हुए कवि ने स्वयं लिख दिया है–

रसरहस्य में मैं कहें, इनके लच्छन भाव,
या ते हँया बरने नहीं, इहाँ कह्यो प्रस्ताव।[4]

इस जगह पर हम श्रृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों के सम्बन्ध में कवि द्वारा प्रस्तुत उदाहरणों की प्रकृति पर विचार करेंगे। अतः क्रमबद्धता के अनुसार अन्य रसों का कवि–प्रस्तुत विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

आलम्बन मात्र निरूपण से रसबोध कराने वाले रसों में हास्य महत्वपूर्ण माना जाता है। हास्य रस के आलम्बन–चित्रण में विकृतरूप, आकार, वेशभूषा, विचित्र अनर्गल वचन और विलक्षण चेष्टाओं को स्थान दिया गया है। कवि ने विकृत रूप का चित्रण कर हास्य की सृष्टि की है।

तन की छवि लुहटु जैसो बुझ्यो, दृगहू चकचूँधरी तैं सरसैं,
दंसन दुति कौडिन पांत बनी, चले चालन ऊँट हू की परसे।
छोटी सी नाक बड़े–बड़े पायन, बोल सुने घन हूँ तरसें
धरि आई है ऐसो सरूपहि भूपर, भाग भस्यौ नर जो दरसै।

इसके अतिरिक्त सामाजिक विद्रूपताओं की ओर भी व्यंग करते हुए उन्होंने सामयिक सांस्कृतिक और नैतिक विघटन का चित्र इस प्रसंग में प्रस्तुत किया है।

सजि–माला छापै तिलक बैठे कहत पुरान,
चोट करत दृग बान की, कहि अरजुन के बान।
यों ज्योतिष सौं जोति की अरज जू कीनो लोग,
जन्मपत्र कर लेत ही बरने जारज योग।[5]

पुराण की कथा कहते हुए रसिक पण्डित का कटाक्ष–दान तथा ज्योतिषी का जन्मपत्र देखते हुए जारज योग का कथन सामयिक कुत्सित अभिजात्य रुचि के परिचायक कहे जा सकते हैं। यहाँ हास, रति–भाव का संचारी बनकर आया है। ज्योतिषी के हास का आलम्बन जारज योग से उत्पन्न होने की अज्ञानता है। 'बिहारी सतसई' के 'पर तिय दोष पुरान सुनि लखि मुलकी सुखदानि' तथा 'फिरि हुलस्यो जिय जोइसी, समुझै जारज योग' जैसी उक्तियाँ भी उक्त कथन का समर्थन करती हैं। सामाजिक पाखण्ड के अतिरिक्त धार्मिक पाखण्ड का संकेत–'जाके नख अरु जटा बिसाला' या 'दाढ़ी रखाय जोगी होइ गेले बकरा' जैसी क्रमशः तुलसी और कबीर की उक्तियों के समान कुलपति ने 'बड़े रोम नख सीस पर' वाले दोहों में किया है।

बड़े रोम नख सीस पर जटाधरी मुख मौन,
कहा भुजा रूँची किए रुकी न मन की गौन।
इड़ा पिंगला जो गही जोगी मान्यो भागु,
कान फराए कह भयो जो न फर्स्यौ जगरागु।

इस खेवे के कवियों में कबीर आदि निर्गुण सन्तों की फटाकर के व्यंगात्मक चिन्ह केवल कुलपति में दिखाई देते हैं।

हास्य के बाद करुण के उदाहरण कवि ने रसरहस्य और युक्तितरंगिणी दोनों में प्रस्तुत किये हैं। करुण में शोक को व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है। मित्र आदि का दुख और मृत व्यक्ति, करुण रस के आलम्बन माने गये हैं। रुदन, कम्प, विलास अनुभाव और ग्लानि, दीनता, मूर्छा इसके संचारी कहे गये हैं।

रोर परी रण में भई मार, मरे बहुतै कछु के बचि आये,
तेऊ पुकारत हा सुत! हा पितु बीरन क्यों हमें छोड़ सिधाये।

देखत छाती फटे सब की, उपजे जिय को सुनि मोह महाये,

ह्वे के उदास तजे हैं अवास, सुहास विलास सबे बिसराये।

'युक्तितरंगिणी' में मृत अभिमन्यु को आलम्बन और अर्जुन को आश्रय रूप में प्रस्तुत किया गया है।

अर्जुन सुनि अभिमन्यु वध, धर पर सक्यो उर दाह,

भूलि वीरता दृगनि ते चल्यो नीर परवाह।

मित्र अथवा भक्ति भावित के दुख से द्रवीभूत होने का उदाहरण 'रसरहस्य' में न देकर 'युक्तितरंगिणी' में दिया गया है।

रौद्र का स्थायीभाव क्रोध है। आलम्बन शत्रु तथा उद्दीपन शत्रु की चेष्टायें होती हैं। नेत्रों का लाल होना, भौंहे तानना, ललकारना आदि अनुभाव और गर्व, अमर्ष आवेग आदि संचारी हैं। कवि ने रामसिंह और शिवाजी तथा भीष्म और कृष्ण के माध्यम से रौद्र रस की निष्पत्ति कराई है।

साहि के हुकुम दल दलवो कितेक बात,

उत्तर ते दक्षिण पहार डारौ चूरि के।

और के भरासे जिन भूलै रे पहारी चढ़ि,

आयो रामसिंह हों हिये में तेजभूरि के।

धौंसा की धकार धाक धौंकल धरा में धरि,

अरिन के सीस भरों खुरतान धुरि के।

खण्ड खण्ड करौं परचण्ड परमण्डल को,

शोणित समूह सातौं सिन्धु राखों पूरि के।।

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह अर्थात् युयुत्सा माना गया है। आलम्बन शत्रु या साहसिक कार्य, अनुभाव अंग संचालन तथा अरुण–नेत्रपात् तथा गर्व, उग्रता, असूया आदि संचारी माने गये हैं। युद्ध वीर में विभावन की सुगमता के लिए ऐतिहासिक गाथाओं का चित्रण प्रायः किया जाता रहा है। वीर रस का आलम्बन प्रत्यक्ष होने के कारण उत्साह की उन्मुखता और कार्य की तीव्रता स्पष्ट लिए होता है। यही कारण है कि यह अधिक प्रभावकारी होता है। अनौचित्य संवर्द्धक उत्साह वीर रस के गहरे प्रभाव में असमर्थ सिद्ध होता है। अपने प्रतिद्वन्द्वी के बल आदि से प्रेरित वीर की युयुत्सा भी प्रतिज्ञापूर्ति या उद्देश्य पूर्ति के प्रयोजन के कारण वीर रस निष्पन्न करने में सहायक होती है। वासुदेव की प्रतिज्ञा भंग कराने के लिए भीष्म का कथन युद्धवीर का सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है।

मेरे युद्ध उद्ध करि आयुध सके न कोय,

मानव की कहा गति दाख न देव की,

अर्जुन की गज्ज कहा सम्मुख हमारे रहे,

कछु हू न जाने गति बावन के मेव की।

कुटिल बिलोकनिते होत लोक खण्ड खण्ड,

जाको करु प्रकट धराधर की टेच की,

भीषण हौं आयौ रन भीषम मचाइ आज,

खगबल पैजहि छुड़ाऊ वसुदेव की।

यहाँ योद्धा की युद्ध भावना में आत्म सम्मान की रक्षा के कारण उत्साह है, क्रोध संचारी है तथा कर्म की असाधारणता आलम्बन है 'खग बल पैजहि छुड़ाऊ वसुदेवकी' कथन से इसकी पुष्टि हो जाती है। वीर काव्य ओजस्वी होना चाहिए। ओज गुणानुकूल भाषा एवं ध्वनि से निष्पत्ति में सहायता मिलती है। कुलपति मिश्र की रचनाओं में यह गुण विद्यमान है। वीर कवि कर्म की दृष्टि से योद्धा में तेजस्विता, धीरता, प्रचंडता आदि के साथ उसकी मार–काट अर्थात् उसके युद्ध कर्म का वर्णन भी होना चाहिए। विवेच्य पद में दोनों ही तथ्यों की पूर्ति मिल जाती है।

युद्धवीर के अतिरिक्त दानवीर, दयावीर तथा धर्मवीर प्रमुखभेद माने जाते हैं। कुलपति ने प्रसिद्ध दानी कर्ण की उक्तियों को दानवीर, शिव की कपोत–रक्षा सम्बन्धी उक्तियों को दयावीर तथा युधिष्ठिर की धर्मनिष्ठा को धर्मवीर के उदाहरणों में व्यंजित किया है।

कर्ण की 'सीसहु कटि कृपाण सदेहु हों, होय जो भिक्षुक को मनभायों, शिवि की 'तू जनि सोचै कपोत के पोतक, आपनि देह दे ताहि बचाओ' तथा युधिष्ठिर की, 'धाक यही है युधिष्ठिर की धन धाम तजों पै न बोलन फेरों' उक्तियाँ यश को प्रकृति आलम्बन स्वीकार करके चली है। लोक रक्षण परक होने के कारण दया, धर्म तथा दान आदि सत् के संघटन को लक्ष्य बनाकर चलते हैं। अतः सत्व रूप वीर रस की निष्पत्ति में अन्य की अपेक्षा इनका स्थायी प्रभाव पड़ता है। इसी बात को ध्यान में रखकर कवि ने पुराण–सम्मत कथाओं को पद्य–बद्ध किया है। वीररस के आलम्बन महत्कर्म का पर्यवसान लोक–कल्याण में मानने के कारण ही उत्सर्ग के प्राधान्य से युद्धवीर, दानवीर, दयावीर, धर्मवीर, विभेद वीर रस के किये गए हैं। कुलपति द्वारा प्रस्तुत उदाहरण शास्त्रीय दृष्टि से सर्वथा शुद्ध हं।

स च वीरो दान वीरो, धर्म वीरो युद्धवीरो, दयावीरश्चेति चतुर्विधः।[6]

भयानक रस की निष्पत्ति में सिंह इतै इत व्याल कराल इतै तकि व्याधहू ताकि रह्यौ 'सर' तथा 'स्वेद कंप रोमांच तन जम मुह व्याकुल मैन, विष्वरूप विकराल भय सक्यो न मूँदे नैन'[7] दो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इसका एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है–

दंतनि अन्त उठाय फिराय सु कै किलकार धरा में पटक्कतु,
हाथी की छाती पैठि पिशाच सु ओठ चलाय चलाय मटक्कतु।
स्वाद सों यौं गट के लटके पुनि गेंद सी खेलत हाड़ सटक्कतु,
मांस के पिंडन घट्ट हस्यो लोहू कौं ले घट घट्ट घटक्कत।।

प्रथम उदाहरण शुद्ध है और द्वितीय में स्थायीभाव कथन के कारण स्ववाच्यत्व दोष आ गया है। वीभत्स में, जुगुप्सा व्यंजक चित्रों का प्राधान्य होता है। कवि ने रसरहस्य में युद्धोपरान्त का एक दृश्य तथा तरंगिणी में नारी के अस्थि मज्जामय शरीर का घृणित चित्र प्रस्तुत किया है। प्रथम वीभत्स का स्पष्ट चित्र तथा द्वितीय रूप की क्षणिकता और घृणात्मक व्यंजना के कारण निर्वेदमूलक अधिक है।

लोचन कीचर नाक साफ कफ माँग काढ़ि, कुच जान,
मूत कूप सर्वस्व पर कामिनी करत गुमान।

विस्मय अथवा आश्चर्य को लेकर अद्भुत की सृष्टि की जाती है। विस्मय में आश्रय आलम्बन को मुग्ध होकर देखता भर रहता है, सचेशष्ट नहीं होता। उत्साह से विस्मय में यही अन्तर है। आलम्बन के अलौकिक चरित्र तथा उसकी व्यापार

विलक्षणता उद्दीपन के रूप में कार्य करते हैं। कवि ने कृष्ण के बाल–जीवनगत किन्तु विलक्षण व्यापारों का उल्लेख कर अद्भुत के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं–

जानी न परत यह कौन परकट भया,
आनि के यशोमति के भागन के दाय सों।,
तीन ही दिना कौ कोडर पूतना पछारे,
बात देखी न सुनी है ऐसी मानुष सुभाउ सों।,
तनक से तन ही सौ मार्‌यौ है अधासुर,
जू व्याप रह्यौ अधनी अकास निजकाय सों।,
बालक बिहारी गति जाई न निहारी तहाँ,
नाचत है, काली के बदन पर चाय सों।
दावानल अचमन कियो, काली के सिरनाच,
पय पावति प्राननु पिये, कहा मौन यह साँच।

शान्तरस के वर्णन में संसार की असारता से प्रेरित होकर तीर्थदर्शन आदि की कामना व्यक्त की जाती है। 'युक्तितरंगिणी' में माया का प्रपंच, तृष्णा की अभिवृद्धि, दुःखातिशयता, असन्तोष तथा माया–मोह का चित्रण कर संसार की नश्वरता प्रतिपादित की गयी है। गुरुप्रसाद तथा आत्मसाक्षात्कार को मुक्ति का साधन निरूपित किया गया है। माया के मिथ्या आभास को भ्रम के कारण स्वीकार कर लेने पर दार्शनिक उक्तियों द्वारा एवं उदाहरणों द्वारा तथ्य की पुष्टि की गयी है। आत्म साक्षात्कार की प्रेरणा तथा अविद्या और ब्रह्म का आभास सम्बन्ध निरूपित किया गया है। परम्परित और शास्त्रानुमोदित युक्तियों द्वारा प्रकरण की समाप्ति की गयी है।

गुरु प्रसाद ते होइ जब, आतम जोति विकास,
नलिनी आनि का बुद्धि के, सुद्ध सत्य मति वास।
करता भरता भौन के, हरता तेरे भाग
नलिनी के सुक्लौ बध्यौं तु ही विषै अनुराग।
ब्रह्म बँध्यौ प्रतिबिम्ब कै बँधे अविद्या माँह,
ज्यों बाँध्यौ हनुमान को नाति निसाचर छाँह।[8]

इन नव रसों के अतिरिक्त कुछ लोग भक्ति को भी अलग रस मानते हैं। उसकी स्थापना साहित्यिक क्षेत्र की न होकर धार्मिक क्षेत्र की है। साहित्यशास्त्र में इसकी गणना देवादि विषयक भावध्वनि के रूप में हुई है। गौड़ीय वैश्णव भी देवता विशयक रति को भाव ही मानते हैं, किन्तु 'कृश्णस्तु भगवान स्वयं' के कारण कृष्ण विषयक रति को भाव के अन्तर्गत न मानकर स्वतन्त्र रस मानते हैं। कुलपति इस तथ्य से परिचित लगते हैं। तभी उन्होंने 'युक्तितरंगिणी' में 539-541 तक भाव–ध्वनि के रूप में दैव विषयक रति का चित्रण किया है–

देव काज मन्दिर धर्‌यौ ह्वै कूरम निजपीठ,
मो काढ़त भव जलधि ते पावहि कहिगे नीठ,
महामीन भव जलधि से त्यौं ही मोहि उधार,

विप्र जानिके हन तुहे महामोह नृप मोहि

जो न बचैं हो राम तौ लाज आइ है तोहि।

'रसरहस्य' में भी, उन्होंने देव रति भाव ध्वनि शीर्षक ही दिया है, उसे भक्ति रस की संज्ञा नहीं दी। वैसे लक्ष्य रूप में कृष्ण, शिव तथा दुर्गा विषयक स्तुतियाँ रस रहस्यादि में भक्ति की दृष्टि से उत्कृष्ट की जा सकती है, पर शास्त्रीय दृष्टि से कवि उन्हें देवादि विषयक रति के कारण भाव–ध्वनि के उदाहरण ही स्वीकार करता है, भक्ति रस में नहीं। यही स्थिति वात्सल्य की भी है।

चंद सौ आनन चाह सौं चूमे चलै चख चाह न चोस चखाई,

हार दिये कठला बधना पहुँची पहरी सु महा छवि छाई।

तोरि के तिनका डिठोना बनाय के प्यार से वारत लोनरु राई,

गोद ते गोद हँसी भरि मोद विनोद सो देखिए लाल कन्हाई।

उत्तम लक्ष्य होते हुए भी शास्त्रीय दृष्टि से कवि के मत में, उसे भक्ति रस शीर्षक से अभिहित नहीं किया जा सकता।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कुलपति के लक्ष्य शास्त्र स्थिति सम्पादन की दृष्टि से कुछ स्थानों के अतिरिक्त सर्वथा शुद्ध है। 'रसरहस्य' के उदाहरण 'युक्तितरंगिणी' की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और विस्तृत है। लक्ष्य का प्रतिपाद्य विषय परम्परानुमोदित अधिक है। विश्रुत पौराणिक कथाओं के पात्रों को ही आलम्बन विभाग के रूप में चुना गया है। 'युक्तितरंगिणी' में अनुभावों और संचारियों की व्यंजना पर अधिक बल दिया गया है। लक्ष्य प्रस्तुत करते हुए मम्मट की मान्यताओं का सतर्कता से पालन किया गया है तथा एक ही रूढ़ आलम्बन (कृष्ण) को केन्द्र मानकर रसों के उदाहरण प्रस्तुत करने की रूढ़ि से बचकर उन्होंने इस प्रसंग को केशव आदि की अपेक्षा अधिक सुष्ठु बनाया है। भवभूति, भोजराज, विश्वनाथ, नारायण पण्डित तथा अभिनव सम्मत एक रसवादी मान्यता की उपेक्षा कर उन्होंने सर्वसम्मत नव–रसों का विवेचन ही किया है। यह प्रवृत्ति कवि की शिक्षक, आचार्य की दृष्टि की सूचना देती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल रामचन्द्र (2010), हिन्दी साहित्य का इतिहास, नयी दिल्ली, प्रकाशन संस्थान, पृष्ठ–38
2. सिंह प्रभाकर (2016), रीतिकाव्य मूल्यांकन के नये आयाम, इलाहाबाद लोक भारती प्रकाशन, पृष्ठ–43
3. प्रसाद शशिप्रभा (2007), रीतिकालीन भारतीय समाज, इलाहाबाद, भारती प्रकाशन पृष्ठ–52
4. कुलपति मिश्र – रस रहस्य 3/61
5. कुलपति मिश्र – युक्तितरंगिणी, दोहा 461-465
6. विश्वनाथ – साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, 234
7. कुलपति मिश्र – रस रहस्य 3/82, युक्तितरंगिणी–486
8. कुलपति मिश्र – युक्तितरंगिणी, दोहा 495, 499 व 520